

सोशल मीडिया और मतदाता

कमल नयन चौबे

भारत में सोशल मीडिया का प्रचलन पिछले एक दशक से ज़्यादा समय से काफ़ी बढ़ा है। सोशल मीडिया का अर्थ ऐसे मीडिया से है जहाँ आम लोग खुल कर अपने विचार अभिव्यक्त कर सकते हैं, दूर के दोस्तों से जुड़ सकते हैं, नये दोस्त बना सकते हैं, निजी जीवन की खुशियों या दुखों को अभिव्यक्त कर सकते हैं या फिर राजनीतिक विचार ज़्यादा खुल कर रख सकते हैं। सोशल मीडिया के माध्यमों में लिख कर, तस्वीर या कार्टून या वीडियो साझा कर के लोग अपने विचारों को वाणी देते हैं। पिछले कुछ वर्षों से सोशल मीडिया को राजनेताओं ने भी अपने विचार सम्प्रेषित करने और लोगों से जुड़ने के एक माध्यम के रूप में स्वीकार किया है। अकसर समाचार-पत्रों या टेलीविज़न पर बड़े नेताओं द्वारा किये गये ट्वीट या उनके फ़ेसबुक पोस्ट के आधार पर ख़बरें भी बनाई जाती हैं। किसी नेता को इन सोशल मीडिया साइट्स पर कितने लोग 'फ़ॉलो' करते हैं, इसे उस नेता की लोकप्रियता का आधार भी माना जाने लगा है। निस्संदेह सोशल मीडिया हमारे देश की राजनीति का अभिन्न हिस्सा बन चुका है। दूसरे, देशज भाषाओं में लिखने की सुविधा विकसित होने के कारण इसका लोकतंत्रीकरण भी बढ़ा है। लेकिन अभी तक इस बात का व्यवस्थित अध्ययन नहीं हुआ है कि सोशल मीडिया ने वोटर के तौर पर लोगों के राजनीतिक व्यवहार को किस तरह प्रभावित किया है? क्या सोशल मीडिया अख़बारों, टीवी चैनलों आदि से ज़्यादा बड़े और प्रभावकारी माध्यम के रूप में विकसित हो चुका है? क्या लोग सोशल मीडिया को अपने लिए ख़बरों का मुख्य स्रोत मानते हैं? क्या वे इससे प्रभावित हो कर मतदान करते हैं? क्या सोशल मीडिया अल्पसंख्यकों, विशेष रूप से मुस्लिमों के ख़िलाफ़ ज़हर उगलने का मंच बन गया है? इन सब प्रश्नों के बारे में तरह-तरह की दावेदारियाँ तो हैं, पर कोई व्यवस्थित अध्ययन नहीं मिलता है। अमूमन व्यक्तिगत अनुभव या कुछ उदाहरणों के माध्यम से कुछ निष्कर्ष निकाले जाते हैं। इस कमी को पूरा करने के लिए विकासशील समाज अध्ययन पीठ (सीएसडीएस) के लोकनीति कार्यक्रम ने *सोशल*

मीडिया ऐंड पॉलिटिकल बिहेवियर के रूप में पहली बार इस तरह के व्यवस्थित अध्ययन का प्रयास किया है। सोशल मीडिया और लोगों के राजनीतिक सोच और व्यवहार पर इसके प्रभावों का गहराई से पड़ताल करने वाली यह जाँच-रपट विशेष रूप से हाल ही में सम्पन्न हुए 2019 के लोकसभा चुनावों के संदर्भ में लोगों की राजनीतिक वरीयताओं को आकार देने में सोशल नेटवर्क की अलग-अलग साइट्स और ऐप्स के प्रभावों के परीक्षण पर केंद्रित है। रपट के प्रायोजकों में लोकनीति के साथ-साथ कोरनार्ड एडेननाउर स्टिफ़टुंग नामक जर्मन संस्था भी शामिल है।

इस लेख में मुख्य रूप से इस रपट के विभिन्न आयामों का आलोचनात्मक परीक्षण किया गया है। यह समीक्षा चार भागों में है। पहले भाग में इस रपट की अध्ययन-पद्धति की विवेचना है। दूसरे भाग में इस अध्ययन से उभरकर आये विभिन्न आयामों को प्रस्तुत किया गया है। तीसरे भाग में इस रपट के कुछ बिंदुओं को आलोचनात्मक दृष्टि से रेखांकित किया गया है, और अंतिम भाग इस समीक्षात्मक आलेख का निष्कर्ष प्रस्तुत करता है।

I

अध्ययन-पद्धति

किसी व्यवस्थित अनुसंधान की गहरी समझ बनाने के लिए यह आवश्यक है कि हम उसकी अध्ययन-पद्धति को समझें। विशेष रूप से, अखिल भारतीय स्तर पर अध्ययन करके निष्कर्ष प्रस्तुत करने का दावा करने वाली किसी भी पड़ताल की अध्ययन-पद्धति को समझना अत्यंत आवश्यक है। इससे पाठकों और अन्य अनुसंधानकर्त्ताओं को इस अध्ययन के दायरे और इसकी सीमाओं को समझने में सहायता मिलती है। इस रपट के आख़िर में विस्तार से अध्ययन-पद्धति के बारे में बताया गया है। इसके अनुसार प्रस्तुत विश्लेषण अप्रैल-मई, 2019; मई, 2018; मई, 2017; और अप्रैल-मई, 2014 में लोकनीति के राष्ट्रीय सर्वेक्षणों पर आधारित है। जहाँ 2019 और 2014 में किये गये सर्वेक्षण लोकसभा चुनावों के दौरान लोकनीति द्वारा किये गये राष्ट्रीय चुनाव अध्ययन का भाग थे, वहीं 2017 और 2018 के सर्वेक्षण लोकनीति के 'मूड ऑफ़ द नेशन' सीरीज़ का हिस्सा थे।[1] 2019 का सर्वेक्षण एक 'पोस्ट-पोल' (चुनाव-उपरांत का) सर्वेक्षण था, जो लोकसभा चुनावों के प्रत्येक चरण के कुछ दिनों बाद किया गया था। वहीं, 2014 का सर्वेक्षण एक 'प्री-पोल' (चुनाव-पूर्व) सर्वेक्षण था।

2019 के सर्वेक्षण में कुल 26 राज्यों के 211 संसदीय क्षेत्रों से 26,236 मतदाताओं का सैंपल लिया गया। 2018 का सर्वेक्षण कुल 19 राज्यों में किया गया था, तथा इसमें 175 संसदीय क्षेत्रों के 11,373 उत्तरदाताओं से बातचीत की गयी थी। 2017 का सर्वेक्षण 19 राज्यों में किया गया था और इन राज्यों के 146 संसदीय क्षेत्रों के 11,373 मतदाताओं से बातचीत की गयी। 2014 का सर्वेक्षण 21 राज्यों में हुआ, जिसमें 301 संसदीय क्षेत्रों के 20,957 मतदाताओं से बातचीत की गयी।[2] प्रत्येक सर्वेक्षण में बहु-चरण रैंडम सैंपलिंग पद्धति को अपनाया गया। सबसे पहले संसदीय क्षेत्रों का सैंपल चुना गया, इसके बाद उन संसदीय क्षेत्रों के भीतर विधानसभा क्षेत्रों का चयन हुआ, उसके बाद विधानसभा क्षेत्रों के भीतर मतदान केंद्रों का चयन किया गया। फिर इस मतदान केंद्र की मतदाता सूची से उन मतदाताओं का चयन किया गया, जिनका साक्षात्कार किया जाना था। प्रत्येक चरण में व्यवस्थित औचक नमूना पद्धति (रैंडम सैंपलिंग) को अपनाया। सभी लोगों से उनकी सुविधानुसार स्थानीय भाषा में बातचीत की गयी, और फिर उसका अंग्रेज़ी में अनुवाद किया गया। बातचीत में विस्तृत प्रश्न पूछे गये और अमूमन अर्ध-संरचना वाली साक्षात्कार पद्धति का अनुसरण किया गया।[3]

[1] सीएसडीएस-लोकनीति- कोनार्ड (2019) : 66.
[2] वही : 66.
[3] वही : 67.

अखिल भारतीय स्तर पर विश्लेषण करते समय व्हेटिंग (भारित करने) की सांख्यिकीय पद्धति का अनुसरण करते हुए आँकड़ों को समायोजित किया गया। इसका अर्थ यह है कि विश्लेषण में प्रत्येक राज्य को आनुपातिक प्रतिनिधित्व दिया गया। सभी चार सर्वेक्षणों में मिले सैंपल को 2011 की जनसंख्या के अनुसार जेंडर, स्थानीयता, धर्म और जाति समूह के आधार पर भारित किया गया। रपट में सारणी बनाकर स्पष्ट रूप से दर्शाया गया है कि हर सर्वेक्षण में महिलाओं, शहरी लोगों, अनुसूचित जनजातियों, अनुसूचित जनजातियों, मुस्लिमों, ईसाइयों, सिखों को जनसंख्या में उनके हिस्से के अनुसार प्रतिनिधित्व दिया गया है।[4] अध्ययन-पद्धति के वर्णन और इस रपट की भूमिका से भी यह स्पष्ट है यह अध्ययन सिर्फ़ सोशल मीडिया के लोगों के राजनीतिक व्यवहार पर प्रभाव को समझने के लिए नहीं किया गया है। असल में, यह लोकनीति के ज़्यादा व्यापक चुनाव अध्ययन या देश का मिज़ाज समझने के लिए किये गये अध्ययन का एक भाग है।

II

सोशल मीडिया का प्रसार, विश्वसनीयता और चुनावों पर प्रभाव

राजनीतिक नेताओं, दलों और उम्मीदवारों द्वारा चुनावों के संदर्भ में सोशल मीडिया और डिजिटल तकनीक के उपयोग में वृद्धि हुई है। साथ ही इस बारे में भी वाद-विवाद बढ़ा है कि लोगों के विचारों और मतदान-रुझान को प्रभावित करने में सोशल मीडिया या डिजिटल तकनीक की क्या भूमिका रही है? कई मरतबा यह भी कहा जाता है कि सोशल मीडिया द्वारा ग़लत सूचना और सामाजिक रूप से विभाजनकारी कुप्रचार को बढ़ावा दिया जाता है, जिससे समाज में कटुता और टकराव की स्थिति पैदा होती है।

इस रपट में भारत में सोशल मीडिया से संबंधित चार आयामों पर ध्यान केंद्रित किया गया है : पहला मतदाताओं द्वारा इसके वास्तविक प्रयोग की सीमा; दूसरा इसका उपयोग करने वाले लोगों की सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि; तीसरा, मतदाताओं की जागरूकता के स्तर, अल्पसंख्यकों के प्रति उनके दृष्टिकोण और देश में पहचान से संबंधित बढ़ते वाद-विवाद पर इसका प्रभाव; और चौथा, 2019 के चुनावों में मतदाताओं द्वारा अपने विकल्पों के चुनाव में इसका सम्भावित प्रभाव।[5]

सोशल मीडिया का मतदाताओं द्वारा प्रयोग

यह पूरी रपट चार भागों में बँटी हुई है। इसके पहले भाग में पिछले पाँच वर्षों में सोशल मीडिया प्लेटफ़ॉर्म के उपयोग के संदर्भ में सामने आने वाली प्रमुख प्रवृत्तियों को रेखांकित किया गया है। इसमें सोशल मीडिया के पाँच प्लेटफ़ॉर्म अर्थात् फ़ेसबुक, ट्विटर, व्हाट्सऐप, इंस्टाग्राम और यू-ट्यूब पर ध्यान दिया गया है। 2014 के चुनावों के लोकनीति के राष्ट्रीय सर्वेक्षण के समय से ही इनके उपयोग के बारे में प्रश्न पूछे जाते रहे हैं। इससे इन प्लेटफ़ॉर्मों के लॉन्गीट्यूडनल विश्लेषण (अर्थात् एक ही सैंपल या चर के बार-बार पर्यवेक्षण) का आधार मिलता है।

इस भाग के विश्लेषण से यह बात सामने आती है कि पिछले पाँच वर्षों में फ़ेसबुक और व्हाट्सऐप के उपयोग में ज़बर्दस्त वृद्धि हुई है। वर्तमान में एक तिहाई मतदाताओं द्वारा इनका इस्तेमाल किया जा रहा है, जो इन्हें वर्तमान में देश की सबसे लोकप्रिय सोशल साइट्स बना देता है। हालाँकि ट्विटर का उपयोग करने वालों की संख्या 2014 के 2 प्रतिशत से बढ़कर 12 प्रतिशत हो गयी है, लेकिन यह अभी भी सबसे कम लोकप्रिय सोशल नेटवर्क साइट है। लोकनीति के बहुत से सर्वेक्षणों में मिले आँकड़े भी इसी ओर संकेत करते हैं। लेकिन इससे यह बात भी सामने आती है कि अब विभिन्न

[4] वही : 67.

[5] वही : 63.

सोशल मीडिया का नियमित, औसत या कभी-कभार उपयोग करने वाले लोगों में आधे से ज़्यादा लोगों ने यह कहा कि वे सोशल मीडिया से मिली सूचना पर ज़्यादा विश्वास नहीं करते हैं (या तो बिल्कुल ही विश्वास नहीं करते हैं, या बहुत कम विश्वास करते हैं)। ख़ास तौर पर, सोशल मीडिया का ज़्यादा उपयोग करने वाले लोगों का इससे मिलने वाली सूचना पर गहरा अविश्वास है। चूँकि सोशल मीडिया में 'फ़ेक न्यूज़' (झूठी ख़बरें) काफ़ी बड़ी मात्रा में मौजूद होती हैं, इसलिए इस निष्कर्ष को स्वागतयोग्य माना जाना चाहिए। बहरहाल, हमें यह भी याद रखना चाहिए कि 'सोशल मीडिया का नियमित उपयोग करने वालों का एक बड़ा तबक़ा (पाँचवाँ हिस्सा) मानता है कि वह सोशल मीडिया प्लेटफ़ॉर्म्स पर मिलने वाली सूचना पर अत्यधिक भरोसा करता है।'

सोशल साइट्स में यह वृद्धि काफ़ी हद तक स्थिर या जड़ हो सकती है। जहाँ हम यह देखते हैं कि 2018 तक सोशल मीडिया के अलग-अलग प्लेटफ़ॉर्म्स के उपयोग में वृद्धि हुई है, वहीं पिछले एक वर्ष या उससे कुछ ज़्यादा समय से इसकी वृद्धि रुक गयी है। यह विशेष रूप से ट्विटर के बारे में सच है, लेकिन यह वर्तमान में देश के दो सबसे लोकप्रिय सोशल मीडिया प्लेटफ़ॉर्म्स फ़ेसबुक और व्हाट्सऐप के बारे में भी काफ़ी सच है।[6]

इस रपट के अनुसार, वर्तमान में सिर्फ़ एक-तिहाई मतदाता ही सोशल नेटवर्क साइट का उपयोग कर रहे हैं और दो-तिहाई मतदाता ऐसी किसी साइट से नहीं जुड़े हैं। इस भाग में क्षेत्रवार विश्लेषण भी किया गया है, जिससे यह बात सामने आती है कि देश के अन्य भागों की तुलना में पूर्वी भाग के लोग सोशल मीडिया का उपयोग करने या उस तक पहुँच रखने में काफ़ी पीछे हैं। वहीं, दक्षिणी और उत्तरी क्षेत्र का इस मामले में सबसे अच्छा प्रदर्शन है। यह भी पाया गया कि स्मार्टफ़ोन तक पहुँच ने भी लोगों के सोशल मीडिया के उपयोग करने या उससे जुड़ने को प्रभावित किया है। लोकनीति के आँकड़ों के अनुसार पिछले दो वर्षों में स्मार्टफ़ोन का स्वामित्व एक चौथाई से बढ़कर एक तिहाई हो गया है।[7] गाँवों की तुलना में बड़े शहरों में स्मार्टफ़ोन रखने वालों की संख्या दोगुनी है। साथ ही, दलित और आदिवासी की तुलना में उच्च जातियों के लोगों के पास स्मार्टफ़ोन ज़्यादा है। इसी तरह, महिलाओं की तुलना में पुरुषों के पास स्मार्टफ़ोन ज़्यादा है।[8]

विभिन्न सामाजिक-आर्थिक समूह और सोशल मीडिया

इस रपट में यह रेखांकित किया गया है कि स्मार्टफ़ोन का स्वामित्व और सोशल मीडिया का उपयोग काफ़ी हद तक एक दूसरे से जुड़े हुए हैं। लोकनीति के सर्वेक्षण आँकड़ों के आधार पर इसमें यह बताया गया है कि सोशल मीडिया के स्पेस में अभी भी उच्च जातियों के लोग दलितों और आदिवासियों की तुलना में तक़रीबन दोगुनी संख्या में सक्रिय हैं। साथ ही, इसमें बताया गया है कि सोशल मीडिया पर मुसलमानों का प्रदर्शन तुलनात्मक रूप से अच्छा है और ऊँची जातियों के बाद वे ही सबसे ज़्यादा सोशल मीडिया का उपयोग करते हैं। साथ ही, कम शिक्षित, बुज़ुर्ग, ग्रामीण और महिला मतदाता सोशल मीडिया के क्षेत्र में शिक्षित, युवा, शहरी और पुरुष मतदाताओं की तुलना में कम सक्रिय हैं।[9] स्पष्ट रूप से, सोशल मीडिया का उपयोग करने वाले लोगों में से अधिकांश लोग कुछ ख़ास अच्छी स्थिति वाले तबक़ों से ही आते हैं— अधिकांश ऊँची जाति, शहरी, अत्यधिक शिक्षित, और युवा मतदाता इसका उपयोग करते हैं। लेकिन समय बीतने के साथ इन तक अन्य तबक़ों की पहुँच भी बढ़ रही है क्योंकि लोगों की इंटरनेट तक पहुँच बढ़ी है, और अब कम ख़र्चीले डेटा पैक मिलने लगे हैं।

---

[6] वही : 64-65.
[7] वही : 5.
[8] वही : 6.
[9] वही : 6, 22.

इस वर्ष और पिछले दो वर्षों के आँकड़ों की तुलना करने से यह संकेत मिलता है कि सोशल मीडिया स्पेस का लोकतंत्रीकरण हो रहा है (अर्थात् इसमें समाज के अन्य तबक़े भी सम्मिलित हो रहे हैं), ख़ासतौर पर कम शिक्षित और ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले लोग भी इसमें सम्मिलित हो रहे हैं।[10] लेकिन सोशल मीडिया पर सक्रिय पुरुषों और महिलाओं के बीच का अंतर अभी भी काफ़ी बड़ा है। महिलाएँ स्मार्टफ़ोन रखने और सोशल मीडिया का उपयोग करने के मामले में पुरुषों से काफ़ी पीछे हैं।[11] पिछले दो वर्षों की तुलना में इस अंतर में बस थोड़ी से कमी आयी है।

सोशल मीडिया, राजनीतिक जागरूकता और अल्पसंख्यकों के प्रति रुझान

रपट के तीसरे भाग में यह विवेचना की गयी है कि लोगों के रुझान को प्रभावित करने में सोशल मीडिया किस तरह की भूमिका निभाता है। मसलन, यह अल्पसंख्यक समुदायों के बारे में उनकी सोच को किस तरह प्रभावित करता है। इसके अनुसार, अमूमन जो लोग सोशल मीडिया का उपयोग करते हैं वे बहुत-सी राजनीतिक घटनाओं के बारे में उन लोगों से ज़्यादा जागरूक होते हैं, जो सोशल मीडिया का उपयोग नहीं करते। रपट के अनुसार, ''सोशल मीडिया का ज़्यादा उपयोग करने वाले हर पाँच में से चार लोगों ने यह दावा किया कि वे कांग्रेस द्वारा दिये गये नारे 'चौकीदार चोर है' तथा भाजपा के नारे 'मैं भी चौकीदार' के बारे में जानते हैं। इसके विपरीत, सोशल मीडिया का प्रयोग न करने वाले प्रत्येक दो में से एक व्यक्ति को इन नारों के बारे में जानकारी नहीं थी। हालाँकि सोशल मीडिया के उपयोग में गिरावट के साथ ही इस जागरूकता में भी गिरावट आ रही थी''।[12]

इसी भाग में धार्मिक अल्पसंख्यकों के बारे में सोशल मीडिया के उपयोगकर्त्ताओं के विचारों का भी विश्लेषण किया गया है। इसमें इस बात पर बल दिया गया है कि सोशल मीडिया का उपयोग करने वाले लोगों का किसी मुद्दे पर तुलनात्मक रूप से ज़्यादा स्पष्ट और अतिवादी दृष्टिकोण होता है। इसलिए जहाँ सोशल मीडिया का उपयोग न करने वाले लोगों की तुलना में सोशल मीडिया का ज़्यादा उपयोग करने वाले लोगों ने यह माना कि मुस्लिम अत्यधिक राष्ट्रवादी होते हैं। वहीं सोशल मीडिया का अत्यधिक उपयोग करने वाले लोगों में एक बड़ा समूह ऐसा भी है जो इसका विपरीत अतिवादी विचार रखता है।[13] निश्चित रूप से ऑनलाइन सोशल नेटवर्कों और ऐप्स पर नफ़रत पैदा करने वाले भाषण और अल्पसंख्यकों की निंदा में वृद्धि हुई है, और यह एक हक़ीक़त है। लेकिन इस रपट के अनुसार, इस बात का कोई ठोस प्रमाण नहीं मिलता है, जो यह संकेत करे कि इस लगातार चलने वाले साम्पदायिक दुष्प्रचार के कारण अल्पसंख्यकों के प्रति लोगों के विचारों में नकारात्मक प्रभाव पड़ा है। और सोशल मीडिया का ज़्यादा प्रयोग न करने वाले लोगों की तुलना में सोशल मीडिया का ज़्यादा प्रयोग करने वाले लोगों में यह मानने की सम्भावना ज़्यादा थी कि मुस्लिम राष्ट्रवादी होते हैं, और भारत समान रूप से सभी धर्मों को मानने वाले लोगों का है (और सिर्फ़ हिंदुओं का नहीं है)।[14]

शायद एक सकारात्मक निष्कर्ष यह भी है कि सोशल मीडिया का नियमित, औसत या कभी-कभार उपयोग करने वाले लोगों में आधे से ज़्यादा लोगों ने यह कहा कि वे सोशल मीडिया से मिली सूचना पर

---

[10] वही : 65
[11] वही : 38.
[12] वही : 6.
[13] वही : 6.
[14] वही : 64. बहरहाल, रपट में इस निष्कर्ष के बारे में एक एहतियातन बिंदु यह भी जोड़ा गया है कि इन प्रश्नों के संबंध में सामाजिक वांछनीयता का एक तत्त्व भी काम कर सकता है. और यह सुनिश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता है कि ऑफ़ लाइन इस प्रकार का उत्तर देने वाला उत्तरदाता सोशल मीडिया पर खुलकर या गुमनामी के साथ बहुमतवादी संदेशों के साथ किस प्रकार व्यवहार करता होगा या किस प्रकार प्रतिक्रिया देता होगा.

> **सिर्फ़ एक-तिहाई मतदाता ही सोशल नेटवर्क साइट का उपयोग कर रहे हैं और दो-तिहाई मतदाता ऐसी किसी साइट से नहीं जुड़े हैं। ... देश के अन्य भागों की तुलना में पूर्वी भाग के लोग सोशल मीडिया का उपयोग करने या उस तक पहुँच रखने में काफ़ी पीछे हैं। वहीं, दक्षिणी और उत्तरी क्षेत्र का इस मामले में सबसे अच्छा प्रदर्शन है। यह भी पाया गया कि स्मार्टफ़ोन तक पहुँच ने भी लोगों के सोशल मीडिया के उपयोग करने या उससे जुड़ने को प्रभावित किया है। लोकनीति के आँकड़ों के अनुसार पिछले दो वर्षों में स्मार्टफ़ोन का स्वामित्व एक चौथाई से बढ़कर एक तिहाई हो गया है। गाँवों की तुलना में बड़े शहरों में स्मार्टफ़ोन रखने वालों की संख्या दोगुनी है। साथ ही, दलित और आदिवासी की तुलना में उच्च जातियों के लोगों के पास स्मार्टफ़ोन ज़्यादा है। इसी तरह, महिलाओं की तुलना में पुरुषों के पास स्मार्टफ़ोन ज़्यादा है।**

ज़्यादा विश्वास नहीं करते हैं (या तो बिल्कुल ही विश्वास नहीं करते हैं, या बहुत कम विश्वास करते हैं)। ख़ास तौर पर, सोशल मीडिया का ज़्यादा उपयोग करने वाले लोगों का इससे मिलने वाली सूचना पर गहरा अविश्वास है। चूँकि सोशल मीडिया में 'फ़ेक न्यूज़' (झूठी ख़बरें) काफ़ी बड़ी मात्रा में मौजूद होती हैं, इसलिए इस निष्कर्ष को स्वागतयोग्य माना जाना चाहिए। बहरहाल, हमें यह भी याद रखना चाहिए कि 'सोशल मीडिया का नियमित उपयोग करने वालों का एक बड़ा तबक़ा (पाँचवाँ हिस्सा) मानता है कि वह सोशल मीडिया प्लेटफ़ॉर्म्स पर मिलने वाली सूचना पर अत्यधिक भरोसा करता है'।[15]

2019 के लोकसभा चुनाव और सोशल मीडिया

इस रपट में हाल ही में सम्पन्न हुए लोकसभा चुनावों में सोशल मीडिया के उपयोग और लोगों के मत व्यवहार पर इसके प्रभाव का परीक्षण किया गया है। लोकनीति 2019 के चुनावी सर्वेक्षण के आँकड़ों का विश्लेषण करते हुए इसमें बताया गया है कि सोशल मीडिया का उपयोग न करने वालों की तुलना में इसका उपयोग करने वालों के बीच भाजपा का समर्थन आधार ज़्यादा था। लेकिन इसके साथ ही यह याद रखने की भी आवश्यकता है कि जो लोग सोशल मीडिया से नहीं जुड़े थे, उनके बीच भी भाजपा ने काफ़ी अच्छा प्रदर्शन किया। रपट में यह साफ़ तौर पर कहा गया है कि 'लोकनीति के राष्ट्रीय चुनाव अध्ययन के मतदान व्यवहार से आँकड़ों के विश्लेषण से जो निष्कर्ष सामने आते हैं, वे हमें विश्वासपूर्वक यह कहने की अनुमति नहीं देते हैं कि सोशल मीडिया के कारण चुनाव भाजपा के पक्ष में गया। आँकड़ों से यह बात अवश्य सामने आयी कि सोशल मीडिया का उपयोग करने वाले लोगों के बीच भाजपा लाभ की स्थिति में थी, ख़ास तौर पर उन लोगों के बीच जो इसका ज़्यादा उपयोग करते थे, लेकिन इसके साथ ही सर्वेक्षण से यह बात भी सामने आती है कि भाजपा ने उन लोगों के बीच भी अच्छा प्रदर्शन किया जो सोशल मीडिया पर नहीं थे। यह भी ग़ौरतलब है कि मतदाताओं का एक बड़ा हिस्सा (हमारे सर्वेक्षण के अनुसार तक़रीबन दो-तिहाई) सोशल मीडिया का प्रयोग नहीं करता है, और मतदाताओं का सिर्फ़ एक-तिहाई हिस्सा ही इसका उपयोग करता है (तथा सिर्फ़ दसवाँ हिस्सा ही नियमित रूप से इसका प्रयोग करता है)। इसलिए ऐसा लगता है कि यदि हम सोशल मीडिया को पूरी चुनावी प्रक्रिया से बाहर कर देते, तो भी भाजपा चुनाव जीत जाती।'[16]

सर्वेक्षण से यह बात भी सामने आती है कि समाज के सभी तबक़ों के लोगों में भाजपा को सोशल मीडिया पर लाभप्रद स्थिति प्राप्त नहीं है। मसलन, जहाँ यह पाया गया कि उच्च जातियों और

[15] वही : 64, 51.
[16] वही : 63.

आदिवासियों में सोशल मीडिया के उपयोग और भाजपा को मतदान के बीच एक मज़बूत सह-संबंध है, वहीं दलितों और ओबीसी के संदर्भ में इस तरह का संबंध सामने नहीं आया। इसी तरह, कॉलेज तक शिक्षा प्राप्त लोगों के बीच यह सह-संबंध मज़बूती से सामने आया, वहीं दसवीं कक्षा तक शिक्षा प्राप्त लोगों के बीच यह सह-संबंध मज़बूती से सामने नहीं आया।[17]

इसके अलावा, जहाँ अधिकांश सोशल मीडिया प्लेटफ़ॉर्म्स पर सोशल मीडिया का ज़्यादा उपयोग करने वाले लोगों के बीच भाजपा को वोट देने की प्रवृत्ति ज़्यादा होती है। वहीं कुछ ऐसे सोशल मीडिया प्लेटफ़ॉर्म्स भी हैं जहाँ यह तथ्य स्पष्ट रूप से सामने नहीं आया। और जिन प्लेटफ़ॉर्म्स पर यह स्पष्ट रूप से सामने आया, वहाँ यह संबंध एकरेखीय नहीं था। इसके अलावा, 2014 की तुलना में सोशल मीडिया का उपयोग करने वाले लोगों के बीच कांग्रेस की तुलना में भाजपा के लाभ की स्थिति में गिरावट आयी। सर्वेक्षण के अनुसार, फ़ेसबुक और ट्विटर के मतदाताओं के बीच मत प्रतिशत के मामले में कांग्रेस से इसकी बढ़त में कमी आयी।[18]

सर्वेक्षण से यह बात भी सामने आती है कि 'मतदाताओं का बहुमत, जिसमें सोशल मीडिया का उपयोग करने वाले मतदाता भी सम्मिलित हैं, अभी भी टीवी और अख़बार जैसी पारम्परिक मीडिया को राजनीति पर समाचार प्राप्त करने का सबसे महत्त्वपूर्ण स्रोत मानता है। सिर्फ़ तीन प्रतिशत लोगों ने यह कहा कि वे राजनीतिक समाचार प्राप्त करने के लिए मुख्य रूप से सोशल मीडिया पर निर्भर हैं।'[19] इसके अलावा, इस सर्वेक्षण में सोशल मीडिया का उपयोग करने वाले सिर्फ़ एक-चौथाई लोगों ने यह कहा कि वे अपने राजनीतिक विचारों को अभिव्यक्त करने के लिए नियमित रूप से सोशल मीडिया का उपयोग करते हैं, और सिर्फ़ एक-तिहाई लोगों ने कहा कि वे नियमित रूप से या कभी-कभी राजनीतिक ख़बरों के बारे में पढ़ने के माध्यम के रूप में इसका उपयोग करते हैं।[20] इन आँकड़ों के कारण हमें यह दावा करने के प्रति एहतियात बरतनी चाहिए कि सोशल मीडिया ने मतदान के विकल्पों को तय किया और इसका चुनाव पर प्रभाव पड़ा। निश्चित रूप से इसने एक भूमिका निभाई लेकिन वह सबसे प्रमुख भूमिका नहीं थी।[21]

III

सोशल मीडिया की भूमिका और प्रभाव का सीमित अध्ययन

यद्यपि यह रपट सोशल मीडिया और लोगों के राजनीतिक व्यवहार पर इसके प्रभाव के बारे में गहन विश्लेषण प्रस्तुत करती है, लेकिन इसकी कुछ स्पष्ट सीमाएँ भी हैं :

> पहला, इस रपट में विभिन्न मतदाताओं द्वारा दिये गये जवाबों के संदर्भ में निष्कर्ष निकाले गये हैं। लेकिन जब भी हम सोशल मीडिया और राजनीति की बात करते हैं तो हमें विभिन्न दलों की 'आईटी सेल' की भूमिका पर भी ध्यान देने की आवश्यकता है। इस बात पर ध्यान दिया जाना चाहिए कि विभिन्न दलों के आईटी सेल किस प्रकार के पोस्ट भेजते हैं, और उनके काम का तरीक़ा क्या है। मसलन, सोशल मीडिया पर उनकी उपस्थिति का स्तर क्या है? उनके द्वारा प्रेषित किये जाने वाले संदेश कैसे हैं? क्या इन संदेशों के माध्यम से धार्मिक या जातीय या प्रांतीय ध्रुवीकरण का प्रयास किया जाता रहा है? इस संदर्भ में विभिन्न दलों के

[17] वही : 63.
[18] वही : 63-64.
[19] वही : 64.
[20] वही : 64.
[21] वही : 64.

> **सोशल मीडिया का उपयोग न करने वाले लोगों की तुलना में ज़्यादा उपयोग करने वाले लोगों ने यह माना कि मुस्लिम अत्यधिक राष्ट्रवादी होते हैं। वहीं अत्यधिक उपयोग करने वाले लोगों में एक बड़ा समूह ऐसा भी है जो इसके विपरीत अतिवादी विचार रखता है। निश्चित रूप से ऑनलाइन सोशल नेटवर्कों और ऐप्स पर नफ़रत पैदा करने वाले भाषण और अल्पसंख्यकों की निंदा में वृद्धि हुई है। लेकिन ... इस बात का कोई ठोस प्रमाण नहीं मिलता है, जो यह संकेत करे कि इस लगातार चलने वाले साम्प्रदायिक दुष्प्रचार के कारण अल्पसंख्यकों के प्रति लोगों के विचारों पर नकारात्मक प्रभाव पड़ा है। ज़्यादा प्रयोग न करने वाले लोगों की तुलना में सोशल मीडिया का ज़्यादा प्रयोग करने वाले लोगों में यह मानने की सम्भावना ज़्यादा थी कि मुस्लिम राष्ट्रवादी होते हैं, और भारत समान रूप से सभी धर्मों को मानने वाले लोगों का है (और सिर्फ़ हिंदुओं का नहीं है)।**

संदेशों के परीक्षण से ज़्यादा स्पष्टता आ सकती है। यह इस रपट में अपनाई गयी अध्ययन-पद्धति की सीमाओं को भी दिखाता है। अर्थात् सिर्फ़ कुछ लोगों से सुनिश्चित प्रश्न पूछने से कई आयाम पीछे छूट जाते हैं।

दूसरा, 'फ़ेक अकाउंट', 'ट्रोल्स' इत्यादि की उपस्थिति और भूमिका के बारे में इस रपट से कोई ख़ास जानकारी नहीं मिलती है। यह हमें सिर्फ़ यह सुखद संदेश देती है कि अमूमन लोग इनके द्वारा फैलाए गये अल्पसंख्यक या मुस्लिम नफ़रत का शिकार नहीं होते हैं। लेकिन असल में, इससे इन 'फ़ेक अकाउंट्स' और 'ट्रोल्स' की भूमिका के बारे कोई ख़ास समझ नहीं बनती है। आवश्यकता इस बात की है कि एक ऐसा अध्ययन भी हो जिससे यह पता चल सके कि सोशल मीडिया पर कितने 'फ़ेक अकाउंट' हैं, 'ट्रोल्स' की भाषा स्तर कैसी है और वे अमूमन किन विचारों का समर्थन करते हैं। सोशल मीडिया पर बहुत से ऐसे समूह हैं जो वर्तमान दौर के बारे में 'ग़लत' ख़बरें तो फैलाते ही हैं, वे अतीत के तथ्यों के साथ भी छेड़छाड़ करते हैं। इस तरह, सोशल मीडिया के अकाउंट या समूहों द्वारा फैलाई जा रही सूचनाओं के पड़ताल की आवश्यकता है।

तीसरा, इसमें अल्पसंख्यकों की भूमिका का सक्रिय परीक्षण नहीं है, यानी अगर वे सोशल मीडिया पर सक्रिय हैं तो क्या वे भी अधिकांश मामलों में सोशल मीडिया के हिंदू उपयोगकर्त्ताओं की तरह ही व्यवहार करते हैं? मसलन, क्या वे मानते हैं कि हिंदू कट्टर हैं या कट्टर होते जा रहे हैं? या वे सोशल मीडिया में कुछ समूहों की गतिविधियों से ख़ुद को 'शक के दायरे में' या 'बहिष्कृत' मानते हैं? रपट में इन तथ्यों के बारे में पड़ताल करने की आवश्यकता थी, लेकिन ऐसा नहीं किया गया है।

चौथा, निश्चित रूप से, इस रपट में अध्ययन-पद्धति के बारे में स्पष्टता से बताया गया है। लेकिन खुद इस विवरण से यह बात सामने आती है कि 2019 के संसदीय चुनावों के अलावा किसी भी अन्य चुनाव में मेघालय, मिजोरम, त्रिपुरा, नागालैण्ड और अरुणाचल प्रदेश से कोई सैंपल नहीं लिया गया। जो स्पष्ट रूप से इस सर्वेक्षण के अखिल भारतीय स्तर के प्रतिनिधित्व के दावे को प्रश्नांकित करता है। इसके अलावा, इस पद्धति में इतने कम सैंपल के साथ (2017 में न्यूनतम 11, 773 और 2019 में अधिकतम 24, 236) भारत की समस्त विविधता को समेट पाना अत्यधिक मुश्किल काम है। मसलन, इसमें अनुसूचित जातियों या जनजातियों का प्रतिनिधित्व है, लेकिन इन समूहों की महिलाओं या इनके भीतर विविध समूह के प्रतिनिधित्व का दावा खुद सैंपल में नहीं किया गया है।

पाँचवाँ, रपट में यह रेखांकित किया गया है कि 2018 के बाद सोशल मीडिया के विभिन्न साइट्स की वृद्धि कम हुई है, या इनमें एक प्रकार की जड़ता आयी है। लेकिन इसके लिए ज़िम्मेदार कारणों के बारे में कोई विश्लेषण नहीं है।

छठा, टीवी और सोशल मीडिया को पूरी तरह अलग करके देखना भी सही नहीं है। मसलन, सोशल मीडिया पर टीवी कार्यक्रमों के कुछ अंशों को लोग साझा करते हैं। विशेष रूप से, यू-ट्यूब पर इस तरह के वीडियो की भरमार होती है। अच्छा होता कि इसमें टेलीविज़न और सोशल मीडिया के आपसी संबंधों की भी पड़ताल करने की कोशिश की जाती है।

IV

निष्कर्ष

इसमें कोई संदेह नहीं है कि सोशल मीडिया भारत के एक बड़े तबक़े के जीवन का अभिन्न अंग बन चुका है। लेकिन अभी तक यह स्पष्ट नहीं था कि असल में यह मतदाताओं की राजनीति को किस सीमा तक प्रभावित करता है। यह अध्ययन इस दिशा में एक अत्यंत प्रभावी और प्रासंगिक पहल है। लोकनीति द्वारा मतदाताओं के राजनीतिक व्यवहार पर सोशल मीडिया के प्रभाव से संबंधित यह रपट सोशल मीडिया के व्यवस्थित अध्ययन में एक महत्त्वपूर्ण योगदान है। यह सोशल मीडिया की भूमिका के बारे में बनी बहुत-सी धारणाओं को तोड़ती है, और आगे अनुसंधान के लिए रास्ता भी तैयार करती है। आवश्यकता इस बात की है कि सोशल मीडिया के विभिन्न आयामों पर ज़्यादा व्यवस्थित तरीक़े से अध्ययन किया जाए क्योंकि सही तरीक़े से उपयोग किये जाने पर यह हमारे देश में लोकतंत्र की जड़ें गहरी कर सकता है, किंतु यदि यह दूसरे समुदायों के प्रति नफ़रत फैलाने, झूठी ख़बरें देने या विरोधियों के निम्नस्तरीय खिल्ली उड़ाने और भाषाई निकृष्टता का माध्यम बनता है तो यह हमारे देश के सामाजिक राजनीतिक जीवन के लिए अत्यंत गम्भीर संकट पैदा कर सकता है।

संदर्भ

सीएसडीएस-लोकनीति, कोनार्ड (2019), *सोशल मीडिया ऐंड पॉलिटिकल बिहेवियर,* लोकनीति-सेंटर फ़ॉर द स्टडीज ऑफ़ डिवेलपिंग सोसायटीज़, दिल्ली.